Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 12, Issue No. 2, January-2017, ISSN 2230-7540

भारतीय संविधान में वर्णित नागरिकों के मौलिक अधिकार

Suman Devi[1]* Dr. Mahender Singh Khichar[2]

[1] Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

सार – ***लोकतांत्रिक व्यवस्था में मौलिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो किसी व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता एवं उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के समुचित एवं बहुमुखी विकास हेतु अनिवार्य हैं, जिन्हें राज्य के विरुद्ध न्यायपालिका का संरक्षण प्राप्त होता है। इन अधिकारों के अभाव में लोकतंत्र मात्र एक कल्पना ही सिद्ध होगा।***

----------X----------

भूमिका

वे अधिकार जो व्यक्ति के जीवन एवं उसके सम्पूर्ण विकास हेतु मौलिक एवं अनिवार्य होने के कारण संविधान द्वारा अपने नागरिकों को प्रदान किए जाते हैं और जिन अधिकारों में राज्य द्वारा भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता, मौलिक अधिकार कहलाते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि, व्यक्ति के इन अधिकारों को मौलिक अधिकार क्यों कहा जाता है? तो इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि ये अधिकार व्यक्ति के पूर्ण भौतिक, मानसिक एवं नैतिक विकास हेतु अत्यावश्यक हैं। इनके अभाव में उसके व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाएगा। इसलिए लोकतंत्रात्मक राज्य में प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के ये मूलभूत अधिकार प्रदान किए जाते हैं। इन अधिकारों को मौलिक इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन्हें देश की सर्वोच्च विधि अर्थात् संविधान में प्रमुखता से स्थान दिया जाता है और साधारणतः संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया के अतिरिक्त इनमें किसी अन्य प्रकार से परिवर्तन नहीं किया जा सकता और न ही राज्य द्वारा इन अधिकारों का किसी भी रूप में, पूर्णतः अथवा आंशिक, अपहरण ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मौलिक अधिकार साधारणतः उल्लंघनीय नहीं होते और संसद, सरकार अथवा बहुमत द्वारा उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। ऐसा होने की स्थिति में पीड़ित व्यक्ति अपने अधिकारों की रक्षार्थ न्यायालय में शरण ले सकता है। व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए न्यायपालिका द्वारा सभी आवश्यक कदम उठाए जा सकते हैं।

किसी भी लोकतंत्र की सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि देश की जनता को आमतौर पर कौन-सी नागरिक स्वतंत्रताएं प्राप्त हैं। नागरिक के व्यक्तित्व का अधिक से अधिक विकास करना लोकतंत्र का उद्देश्य है और व्यक्तित्व के विकास का नागरिक स्वतंत्रता के साथ अन्योन्याश्रय संबंध है। नागरिकों की उन्नति केवल स्वतंत्र समाज में ही होती है। जन-कल्याण की प्रगति भी इसी में निहित है।

प्रत्येक लोकतंत्र राज्य की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अपने नागरिकों को विकास के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करता है। प्रायः सभी लोकतंत्र इसी प्रयोजन के लिए मौलिक अधिकारों की एक सूची अपने संविधान द्वारा प्रत्याभूत करके उन्हें कार्यपालिका तथा विधानमण्डल के अतिक्रमण से सुरक्षित रखते हैं।

सिद्धांततः मौलिक अधिकारों का अर्थ है- परिसीमित प्रशासन और परिसीमित प्रशासन का उद्देश्य है- कार्यपालिका और विधानमण्डल की स्वतंत्र अथवा सम्मिलित रूप में तानाशाही की प्रवृत्ति पर प्रतिबंध लगाना। जिन संविधानों में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था नहीं होती, वह बहुत जल्दी तानाशाही के साधन बन जाते हैं। अतएव मौलिक अधिकारों का आधारभूत सिद्धांत यह है कि

राज्य की शक्ति पर संवैधानिक नियंत्रण के द्वारा व्यक्ति की मूलभूत स्वतंत्रताओं की सुरक्षा की जाए।

मौलिक अधिकार लोकतंत्र के अधर स्तम्भ हैं। मौलिक अधिकार इस दृष्टिकोण से भी लोकतंत्र के लिए अनिवार्य हैं कि उनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के पूर्ण शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास को सुरक्षा प्रदान की जाती है। इनके द्वारा उन आधारभूत स्वतंत्रताओं तथा स्थितियों की व्यवस्था की जाती है, जिनके बिना उचित रूप में नागरिक जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता।

भारतीय संविधान में वर्णित नागरिकों के मौलिक अधिकार

मौलिक अधिकार देश की राजनीतिक प्रणाली में एक दल विशेष की तानाशाही होने से रोकने के लिए अत्यंत आवश्यक है। ये व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक नियंत्रण के बीच उचित सामंजस्य स्थापित करते हैं। इनके द्वारा एक ओर व्यवस्थापिका और कार्यपालिका को कानून द्वारा निश्चित सीमाओं में रहने के लिए बाध्य किया जाता है और दूसरी तरफ नागरिकों को शासन के स्वेच्छाचारी संचालन के विरुद्ध जनमत के निर्माण हेतु उचित अवसर प्रदान किए जाते हैं। इस प्रकार मौलिक अधिकार नागरिकों को न्याय और समुचित व्यवहार की सुरक्षा प्रदान करते हैं और राज्य के बढ़ते हुए हस्तक्षेप तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित करते हैं। ये अधिकार मानवीय स्वतंत्रता के मापदण्ड और संरक्षक दोनों ही हैं।

जवाहरलाल नेहरू ने अपने सुप्रसिद्ध उद्देश्य-प्रस्ताव में यह कहा था कि संविधान का लक्ष्य एक ऐसे गणतंत्र की स्थापना का होना चाहिए, जिसमे सभी लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनितिक न्याय की व्यवस्था हो। इसी उद्देश्य-प्रस्ताव से संविधान की प्रस्तावना का जन्म हुआ और इसी में मूलभूत अधिकारों का सार निहित है।

मौलिक अधिकारों के विचार का सूत्रपात वर्ष 1215 में इंग्लैंड के मैग्ना कार्टा से हुआ। हालांकि फ्रांस की राज्य क्रांति से विश्व की स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व का संदेश मिला। फ्रांस में 1789 के संविधान में मानवीय अधिकारों की घोषणा को शामिल करके व्यक्ति के जीवन के लिए आवश्यक कुछ अधिकारों को संवैधानिक मान्यता प्रदान करने की प्रथा प्रारंभ की गई। इसके पश्चात् 1791 में अमेरिका के संविधान में संशोधन करके अधिकार पत्र को सम्मिलित किया गया।

भारत में मौलिक अधिकारों के प्रति जागरूकता भी विश्व के इन देशों द्वारा अधिकारों का घोषणा-पत्र जारी करने के पश्चात् उत्पन्न हुई। वास्तव में ये घोषणा-पत्र ही भारतीय जन-मानस के लिए प्रेरणा स्रोत रहे। सर्वप्रथम भारत में मौलिक अधिकारों की घोषणा के लिए 1895 में मांग की गई। भारत में अंग्रेजी राज्य का स्वरूप पूर्णतः स्वेच्छाचारी था। इस स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति के कारण अंग्रेजी सरकार लोगों पर मुकदमा चलाए, बिना उन्हें नजरबंद कर देती थी। इन अत्याचारों की प्रतिक्रियास्वरूप स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं ने मूल अधिकारों की मांग पर जोर देना प्रारंभ कर दिया था।

भारतीय संविधान के भाग-III में सम्मिलित मूल अधिकारों और अन्य भाग में अंतर्विष्ट मर्यादाओं से उत्पन्न होने वाले ऐसे अधिकारों (न्याय निर्णय के क्षेत्र से बाहर के अधिकारों को छोड़कर उदाहरणार्थ राज्य के नीति-निदेशक तत्व जो भाग-IV में है) के बीच, जो समान रूप से न्यायालय द्वारा प्रवृत्त कराए जा सकते हैं, क्या विभिन्नता है? इन दोनों वर्गों के अधिकार समान रूप से न्यायाधीन हैं, उच्चतम न्यायालय में सीधे आवेदन करके अनुच्छेद 32 के अधीन उपचार पाने का अधिकार भाग-III में मूल अधिकार के रूप में सम्मिलित किया गया है। यह उपचार मूल अधिकार की दशा में ही उपलब्ध होता है। यदि अधिकार संविधान के किसी अन्य उपबंध से प्राप्त होता है, उदाहरण के लिए अनुच्छेद 265 या अनुच्छेद 301,तो व्यथित व्यक्ति सामान्यवाद लाकर या उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदन देकर अनुतोष प्राप्त कर सकेगा किंतु अनुच्छेद 32 के अधीन आवेदन नहीं हो सकेगा जब तक कि ऐसे अधिकार के अतिक्रमण के कारण मूल अधिकार का उल्लंघन न होता हो। कुछ संविधानों में मूल अधिकार सांविधानिक संशोधन द्वारा परिवर्तित नहीं किए जा सकते। मूल शब्द से यह ध्वनि भी निकलती है। दूसरे अर्थ में संविधान के अन्य उपबंधों की तुलना में उन्हें उच्चतर स्थान प्रदान किया जाता है किंतु संविधान में यह सिद्धांत स्वीकार नहीं किया गया है। संविधान के संशोधनों से और न्यायिक विनिश्चयों से यह निर्वचन प्राप्त होता है।यह ठीक है कि संविधान के किसी भाग को सामान्य विधान द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता जब तक कि स्वयं संविधान में इसके लिए प्राधिकार न दिया गया हो। किंतु संविधान के सभी भाग, मूल अधिकार सहित, अनुच्छेद 368 के अधीन संशोधन अधिनियम पारित करके संशोधित किए जा सकते हैं किंतु आधारिक लक्षणों में संशोधन नहीं हो सकता।

www.ignited.in

शोध अध्ययन

श्रीमती ऐनी बेसेंट द्वारा 1915 में प्रवर्तित भारतीय संविधान विधेयक या होमरूल में मूल अधिकारों की मांग प्रस्तुत की गई। 1925 में दि कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल में भी इन अधिकारों की मांग की गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1927 के मद्रास अधिवेशन में एक संकल्प पास कर निर्धारित किया गया कि भारत के भावी संविधान का आधार मूल अधिकारों की घोषणा होनी चाहिए। 1928 में मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट में भी मौलिक अधिकारों की मांग की गई। मार्च 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन तथा सितम्बर में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन मेंगांधी जी द्वारा मूल अधिकारों की मांग को दोहराया गया। इसके बावजूद 1934 में संयुक्त संसदीयसमिति ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया और 1935 के भारत सरकार अधिनियम में मूल अधिकारों को शामिल नहीं किया गया।

संविधान के निर्माण के लिए संविधान के गठन की योजना प्रस्तुत करने वाले कैबिनेट मिशन द्वारा सुझाव दिया गया कि मूल अधिकारों, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सिफारिश करने के लिए एक समिति का गठन किया जाना चाहिए, इसलिए संविधान सभा ने वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में परामर्श समिति का गठन किया। परामर्श समिति ने 27 फरवरी, 1947 को पांच उप-समितियों की नियुक्ति की जिनमें एक मूल अधिकारों के संबंध में थी। मौलिक अधिकारों से सम्बंधित इस उप-समिति के सदस्य थे- जे.बी. कृपलानी, मीनू मसानी, के.टी. शाह, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी, के.एम. पाणिक्कर तथा राजकुमारी अमृत कौर आदि।

परामर्श समिति तथा उप-समिति की सिफारिशों के आधार पर संविधान में मूल अधिकारों को शामिल किया गया।

भारत के संविधान के भाग-III के अंतर्गत अनुच्छेद-12 से 35 तक मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन किया गया है। इन अधिकारों का निर्धारण संविधान सभा द्वारा सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में गठित एक समिति द्वारा किया गया था।

निष्कर्ष

अनुच्छेद 15 (1) में राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

(2) कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर-

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या

(ख) पूर्णतः या भागतः राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, के बारे में किसी भी निर्योग्यता दायित्व, निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य की महिलाओं और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

(4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड-2 की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी। है।

सन्दर्भ

चौबे कमल नयन जातियों का राजनीतिकरण, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2008 पृ. 34

आहुजा राम भारतीय सामाजिक व्यवस्था रावत प्रकाशन, जयपुर 2014 पृ. 202

श्रीनिवास एम. एन. कास्ट इन माडर्न इण्डिया एण्ड अदर प्रकाशन बम्बई 2012 पृ. 66

हट्न जे. एच. कास्ट इन इण्डिया: इट्स नेचर फंक्यन एण्ड ओरिजिन, आक्सफोर्ड यूनवर्सिटी प्रैस बम्बई, 2011 पृ. 69

राजक्यिोर (संपा.) जाति प्रथा का विकास, आज के प्रयन, जाति का जहर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 पृ. 15-16

मुखर्जी, राम कृष्ण; "कास्ट इन इटसैल्फ कास्ट एण्ड क्लास और कास्ट इन क्लास इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली, वा. नं. 27, 3 जुलाई 2015 पृ. 175

दत्त एन.के. ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया हिन्दुस्तान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011 पृ. 4

घुर्ये जी.एस. कास्ट क्लास एण्ड आक्यूपे्यन पापूलर प्रकाशन बम्बई 2013 पृ. 27

Corresponding Author

Suman Devi*

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan